<u>उत्तराखंड उच्च न्यायालय, नैनीताल</u>

रिट याचिका (फौजदारी) संख्या 1157/2022

सतविन्द्र सिंह उर्फ सोनू ....याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तराखंड राज्य और अन्य...उत्तरदातागण।

उपस्थितः श्री एस0के0 मंडल, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता।

श्री योगेश पंत, कैविएटर के विद्वान अधिवक्ता।

श्री जे0 एस0 विर्क विद्वान उप महाधिवक्ता के साथ श्री आर0 के0 जोशी राज्य के लिए विद्वान ब्रीफ धारक।

<u>सुनवाई और निर्णय की दिनांकः 04.07.2022</u>

<u>न्यायाधीश, श्री संजय कुमार मिश्रा</u>

1. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

2. इस रिट याचिका (फौजदारी) को दायर करके, याचिकाकर्ता ने भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 323, 427, 504 और 506 के तहत एफ0आई0आर0 केस अपराध संख्या 137/2022 को खरिज करने के लिए उत्प्रेषण–लेख रिट जारी करने की प्रार्थना की है। (इसके बाद संक्षिप्तता के लिए इसे "संहिता" कहा जाएगा) पुलिए स्टेशन खटीमा, जिला उधम सिंह नगर दिनांक 05.06.2022 यह हमारे संज्ञान में लाया गया है कि मामले की बहस के समय विद्वान उप–महाधिवक्ता द्वारा संहिता की धारा 307 और 341 के तहत अपराध जोड़े गए हैं और शायद इस बीच, हिरासत में पूछताछ के बाद गुण–दोष के आधार पर संभवतः शस्त्र अधिनियम, 1959 के प्रावधानों के तहत अपराध जोड़ने की पूरी संभावना है।

3. शिकायतकर्ता ने यह कहते हुए एफ0आई0आर0 दर्ज कराई कि उसके और याचिकाकर्ता के बीच विवाद है। दिनांक 04.06.2022 को रात्रि लगभग 10:00 बजे जब वह अपनी ऑल्टो कार में घर लौट रहा था, तो सड़क पर याचिकाकर्ता द्वारा उसे रोक दिया गया और उसके साथ मारपीट की गई और कार क्षतिग्रस्त हो गई, फिर उसने उस पर शिकायतकर्ता पर गोली चलाई, लेकिन वह खेतों से होते हुए अंधेरे के कारण याचिकाकर्ता, शिकायतकर्ता की हत्या नहीं कर सका। ऐसी रिपोर्ट पर, जैसा कि ऊपर बताया गया है, एफ0आई0आर0 दर्ज की गई है।

4. इस स्तर पर, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने यह तर्क दिए है कि शिकायतकर्ता ने संपत्ति के संबंध में पैसे के भुगतान को लेकर उनके बीच विवाद के कारण याचिकाकर्ता

के विरूद्ध झूठी प्राथमिकी दर्ज की है। उन्होंने सबूतों के साथ छेड़छाड़ करके किसी अन्य व्यक्ति के विरूद्ध झूठा आपराधिक मामला शुरू करने के संबंध में शिकायतकर्ता के विरूद्ध पुलिस द्वारा दर्ज की गई एक एफ0आई0आर0 पर भी भरोसा किया है।

5. हमने रिकार्डो के साथ–साथ पक्षों की ओर उपस्थित अधिवक्ता द्वारा की गई दलीलों की भी सावधानीपूर्वक जांच की है। इस स्तर पर यह विवादित नहीं है कि शिकायतकर्ता द्वारा एक एफ0आई0आर0 दर्ज कराई गई है और दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 161 के तहत उसका बयान जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किया गया है, जिसमें उसने विशेष रूप से याचिकाकर्ता को फंसाया है और कहा है कि वह हमला किया गया, उनकी कार क्षतिग्रस्त कर दी गई और उन पर गोलियां चलाई गई। ऐसा प्रतीत होता है कि विवरण की कुछ कमी है जैसे कि अपराध के हथियार का विवरण जिसके माध्यम से शिकायतकर्ता पर कथित गोली चलाई गई थी, लेकिन यह स्पष्ट है कि शिकायतकर्ता पर आग्नेयास्त्र (बन्दूक) से गोली चलाई गई थी।

6. इस स्तर पर, वास्तव में, विद्वान उप–महाधिवक्ता निर्देश पर प्रस्तुत करेंगे कि जांच के दौरान, जांच अधिकारी ने पाया कि शिकायतकर्ता की कार क्षतिग्रस्त हो गई थी और उन्होंने मौके से दो खाली कारतूस जब्त किए थे। बेशक, जांच अभी तक निष्कर्ष पर नहीं पहुंची है। याचिकाकर्ता को न तो गिरफ्तार किया गया है और न ही वह जांच अधिकारी के सामने पेश हुआ है।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता **"मैसर्स निहारिका इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड" बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य (2021) एससीसी ऑनलाइन एससी 315"** में प्रतिपादित विधि–व्यवस्था पर अपना विश्वास व्यक्त किया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने संहिता की धारा 482 के तहत आवेदन के निपटान और भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत दायर आवेदन के संबंध में निर्देश जारी किया है। इस मामले पर लागू होने वाली कुछ टिप्पणियों पर ध्यान देने के लिए, इस न्यायालय को पता है कि पुलिस के पास संज्ञेय अपराध के मामले की जांच करने के लिए संहिता के अध्याय XIV के प्रासंगिक प्रावधानों के तहत वैधानिक अधिकार और कर्तव्य है। आगे यह माना जाता है कि यह केवल उन मामलों में है, जहां गैर–संज्ञेय अपराध या प्रथम सूचना रिपोर्ट में किसी भी प्रकार का अपराध है, अदालत जांच की अनुमति नहीं देगी। इसके अलावा, किसी एफ0आई0आर0 की जांच करते समय, जिसे रद्द करने की मांग की गई है, अदालत शिकायतकर्ता की एफ0आई0आर0 में लगाए गए आरोपों की वास्तविकता या वास्तविकता या अन्यथा की जांच नहीं कर सकती है। शिकायत/एफ0आई0आर0 को रद्द करना एक नियम के बजाय एक अपवाद होना चाहिए। हालॉकि, साथ ही न्यायालय यदि उचित समझे तो कानून द्वारा पहले रद्द करने और आत्म–संयम के मापदंडों को

ध्यान में रखना चाहिए, विशेष रूप से **"आर0पी0 कपूर बनाम पंजाब राज्य एआईआर 1960 एससी 866"** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित मापदंडों के साथ न्यायालय के पास शिकायतकर्ता की एफ0आई0आर0 को रद्द करने का अधिकार क्षेत्र है। जब एफ0आई0आर0 को रद्द करने की प्रार्थना कथित आरोपी द्वारा की जाती है और न्यायालय जब संहिता की धारा 482 के तहत या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्ति का प्रयोग करता है तो इस पर विचार करना होता है कि क्या एफ0आई0आर0 में लगाये गये आरोप किसी संज्ञेय अपराध का घटित होने या नहीं होने का खुलासा करते हैं। न्यायालय को आरोपों के गुण दोष के आधार पर इस पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है कि यह एक संज्ञेय अपराध है और अदालत को जांच एजेंसी–पुलिस को एफ0आई0आर0 में लगाये गए आरोपों की जांच करने की अनुमति देनी होगी।

इस मामले में, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का कहना है कि कुछ अन्य समझौतों के कारण एफ0आई0आर0 की सामग्री झूठी है। वह एफ0आई0आर0 में किसी अन्तर्निहित कमी की ओर इशारा नहीं करते हैं या यह नहीं कहते हैं कि एफ0आई0आर0 में ऐसे आरोप लगाये गए हैं जो पहली नजर में असंभव है। इसके अलावा, जैसा कि हमने पहले ही पिछले पैराग्राफ में उल्लेख किया है कि एफ0आई0आर0 में शिकायतकर्ता द्वारा लगाए गए आरोप इस तथ्य से समर्थित हैं कि जांच के दौरान शिकायतकर्ता की कार क्षतिग्रस्त पाई गई थी और मौके से दो खाली कारतूस पाए गए थे। इसलिए , हमारी राय है कि यह ऐसा मामला नहीं है जहां प्रारंभिक चरण में एफ0आई0आर0 को रद्द कर दिया जाना चाहिए। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने ऐसा कोई मामला नहीं बनाया है जहां याचिकाकर्ता के विरूद्ध दर्ज एफ0आई0आर0 को रद्द करने से इनकार करने से स्पष्ट रूप से न्याय की हानि होगी। मामले को देखते हुए, हम एफ0आई0आर0 को रद्द करने के इच्छुक नहीं हैं।

8. इस संबंध में कानून का दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न जो उठाया गया है वह यह है कि धारा 506 के तहत अपराध उत्तराखण्ड राज्य में गैर–संज्ञेय है, चूँकि केन्द्रीय कानून दण्ड संहिता की धारा 506 के तहत अपराध को गैर संज्ञेय और जमानती अपराध के रूप में प्रदान करता है, हालाँकि यह आगे देखा गया है कि यू0पी0 संशोधन अधिनियम, 1961 के आधार पर धारा 506 के तहत अपराध को न केवल संज्ञेय बल्कि गैर–जमानती भी बनाया गया है।

9. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि चूँकि इस संशोधन को उत्तर प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2000 की धारा 87 के तहत पारित किसी भी आदेश में शामिल नहीं किया गया है, इसलिए अपराध को गैर–संज्ञेय और जमानती अपराध माना

जाएगा। उनका कहना था कि शुरूआती चरण में चूँकि आई0 पी0 सी0 की धारा 307 और 341 के तहत अपराध को औपचारिक एफ0 आई0 आर0 में शामिल नहीं किया गया था, इसलिए पुलिस ने मामले की जांच में अपने अधिकार क्षेत्र का उल्लंघन किया।

10. दूसरी ओर राज्य के साथ–साथ शिकायतकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क किया है कि उत्तर प्रदेश संशोधन या 2000 में राज्य के पुनर्गठन से पहले उत्तर प्रदेश राज्य पर लागू होने वाले कानूनों के आवेदन के प्रश्न उत्तराखण्ड राज्य का प्रादेशिक क्षेत्र से पहले ही निर्धारित किया जा चुका है और अब यह पुनः एकीकृत नहीं है। वे **" सुमन देवी और अन्य बनाम उत्तराखण्ड राज्य और अन्य (2021) 6 एससीसी 163 "** में पारित विधि व्यवस्था पर अपना विश्वास व्यक्त किया है। पूरे विवाद की सराहना करने के लिए, हमने यू0 पी0 पुनर्गठन अधिनियम, 2000 की धारा 86, 87 और 88 के प्रावधानों पर विचार किया है जो नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है :–

"86 कानूनों की क्षेत्रीय सीमा – *भाग II के प्रावधानों को उन क्षेत्रों में किसी भी बदलाव से प्रभावित नहीं माना जाएगा जहां उत्तर प्रदेश भूमि धारण सीमा अधिरोपण अधिनियम,1961 (यू0पी0 अधिनियम 1, 1961) और कोई अन्य कानून लागू है। नियत दिन से ठीक पहले, विस्तारित या लागू होता है, और उत्तर प्रदेश राज्य के लिए ऐसे किसी भी कानून में क्षेत्रीय संदर्भ, जब तक कि सक्षम विधानमंडल या अन्य सक्षम प्राधिकारी द्वारा अन्यथा प्रदान नहीं किया जाता है, नियत दिन को पहले से मौजूद उत्तर प्रदेश राज्य के भीतर के क्षेत्रों के रूप में माना जायेगा।*

87. कानूनों को अनुकूलित करने की शक्ति– *नियत दिन से पहले बनाए गए किसी भी कानून के उत्तर प्रदेश या उत्तरांचल राज्य के सम्बन्ध में आवेदन को सुविधाजनक बनाने के उद्देश्य से, समुचित सरकार, उस दिन से दो वर्ष की समाप्ति से पहले, आदेश दें, कानून में ऐसे अनुकूलन और संशोधन करें, चाहे निरसन या संशोधन के माध्यम से, जो आवश्यक या समीचीन हो, और उसके बाद हर ऐसा कानून तब तक किए गए अनुकूलन और संशोधनों के अधीन प्रभावी होगा जब तक कि इसमे बदलाव, निरस्त या संशोधन न किया जाए। समक्ष विधानमंडल या अन्य सक्षम प्राधिकारी। व्याख्या इस धारा में अभिव्यक्ति ''उचित सरकार'' का अर्थ है संघ सूची में शामिल किसी मामले से सम्बन्धित किसी भी कानून के सम्बन्ध में, केन्द्र सरकार और किसी राज्य पर लागू होने वाले किसी अन्य कानून के सम्बन्ध में, राज्य सरकार।*

88. काननों का अर्थ लगाने की शक्ति– *इस बात की बावजूद की नियत दिन से पहले बनाए गए कानून के अनुकूलन के लिए धारा 87 के तहत कोई प्रावधान या अपर्याप्त प्रावधान नहीं किया गया है, कोई भी अदालत, न्यायाधिकरण या प्राधिकारी, ऐसे कानून को लागू करने के लिए आवश्यक या सशक्त हो सकता है, उत्तर प्रदेश या*

उत्तरांचल राज्य के सम्बन्ध में इसके आवेदन को सुविधाजनक बनाने के उद्देश्य से, पदार्थ को प्रभावित किए बिना, इस प्रकार से कानून की व्याख्या करे, जो न्यायालय, न्यायाधिकरण, प्राधिकरण के समक्ष मामले के सम्बन्ध में आवश्यक या उचित हो।

11. "सुमन देवी और अन्य बनाम उत्तराखण्ड राज्य और अन्य (2021) 6 एससीसी 163" *के मामले मे, माननीय सर्वोच्च न्यायालय, अधिनियम की पूरी योजना, विशेष रूप से ऊपर उर्द्धत प्रावधानों पर विचार करने के बाद, इस निष्कर्ष पर पहुंचा है निम्नलिखित निष्कर्षः– (उपरोक्त निर्णय के पैरा ग्राफ संख्या 27, 28 और 29)*

*"**27.** पुनर्गठन अधिनियम की धारा 28 के आधार पर, नवस्थापित उत्तराखण्ड उच्च न्यायालय के पास नियत दिन से ठीक पहले लागू कानून के सम्बन्ध में क्षेत्राधिकार, शक्तियां और अधिकार थे, जिसका प्रयोग इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा किया जा सकता था।*

***28.** पुनर्गठन अधिनियम के प्रावधानों को व्यापक रूप से पढ़ने से पता चलेगा कि पूर्ववर्ती राज्य यू0पी0 में लागू कानून नए राज्य उत्तराखण्ड के निर्माण के बाद भी प्रभावी बने रहेंगे। धारा 87 का प्रावधान केवल राज्य और अदालतों को मौजूदा कानूनों को लागू करने के लिए बाध्य करना था, इस हद तक कि उसे पुनर्गठन अधिनियम के शुरू होने की तारीख से दो साल की अवधि के भीतर संशोधित किया गया था। यदि अपीलकर्ता सही है, तो अनुकूलन आदेश में किसी कानून या विनियमन की मात्रा चूक, मौजूदा कानून के सम्बन्ध में एक शून्य पैदा करने का विनाशकारी प्रभाव होगा, जिसका विशेष रूप से उल्लेख नहीं किया गया है। दूसरे शब्दों में, अनुकूलन करने की शक्ति का मतलब केवल यह था कि ऐसे कानून जिनमें कुछ संशोधन या अनुकूलन की आवश्यकता होती है, उनहें परिभाषित अवधि यानि दो वर्ष के भीतर संशोधित या अनुकूलित किया जा सकता है। अनुकूलन या संशोधन की किसी भी कवायद के अभाव में, यू0पी0 राज्य में लागू सभी कानून, नियम, विनियम और वैधानिक आदेश बिना किसी बदलाव के लागू होते है।*

***29.** यह अदालत अपीलकर्ता के तर्कों को निराधार मानती है कि राज्य मार्च 2016 में उसके द्वारा जारी विज्ञापन में निर्दिष्ट मानदंडों से बंधा हुआ था, भले ही उस अधिसूचना के खण्ड 7 में स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट किया गया था कि एएनएम के लिए भर्तियां वैधानिक नियमों के अनुसार होंगी। प्रासंगिक योग्यताओं (यानि विज्ञान स्ट्रीम के साथ मध्यवर्ती या समकक्ष योग्यता) का उल्लेख करने की चूक ने राज्य को मौजूदा नियमों का पालन करने के दायित्व से मुक्त नहीं किया। यह विवादित नहीं है कि 1998 में संशोधन के बाद 1997 के नियम में कहा गया था कि एएनएम या स्वास्थ्य कार्यकर्ता के रूप में भर्ती होने के इच्छुक उम्मीदवारों के पास आवश्यक एएनएम सर्टिफिकेट कोर्स*

के अलावा विज्ञान स्ट्रीम के साथ इण्टरमीडिएट पास (या इसके समकक्ष) सहित शैक्षणिक योग्यता होनी चाहिए। उत्तराखण्ड राज्य निर्माण के बाद भी वह स्थिति यथावत् बनी रही। 2016 में सम्बन्धित भर्ती के लिए विज्ञापन प्रकाशित होने के बाद ही नियमों में बदलाव किया गया था; बदले गए नए नियमों ने 2010–2013 की अवधि के लिए और इसके बाद जुलाई 2016 के बाद विज्ञान विषयों के साथ इण्टरमीडिएट स्तर की अर्हता प्राप्त करने की आवश्यकता से राहत दी। अन्य सभी अवधियों के लिए, अनिवार्य विज्ञान स्ट्रीम के साथ इण्टरमीडिएट या समकक्ष उत्तीर्ण की बुनियादी शैक्षिक योग्यता एक अनिवार्य शर्त बनी रही। इसलिए, यह तर्क कि राज्य अपने द्वारा निर्दिष्ट मानकों से बंधा हुआ था (विज्ञापन में विज्ञान के साथ इण्टरमीडिए की शैक्षिक योग्यता के बारे में कोई उल्लेख नहीं किया गया था) नए राज्य को वैधानिक नियमों को लागू करने के दायित्वों से मुक्त नहीं किया। यह दावा करने में बहुत देर हो चुकी है कि कानून या वैधानिक बल वाले मौजूदा नियमों के विपरीत किसी वादे को लागू करने के लिए मजबूर करने के लिए किसी भी प्रकार की रोक राज्य के विरूद्ध काम कर सकती है। इसलिए अपीकर्ताओं की ओर से इस आशय की सभी दलीलें खारिज की जाती हैं। इसके अलावा यह याद रखना उपयोगी है कि किसी सार्वजनिक पद या सेवा के लिए उम्मीदवार या आवेदक की पात्रता का निर्धारण सम्बन्धित विज्ञापन के सन्दर्भ में, ऐसे पद या सेवा के लिए आवेदन प्राप्त होने की अन्तिम तिथि के आधार पर किया जाना है। प्रचलित सेवा नियम यह पद स्थापित प्राधिकारी द्वारा मान्यता प्राप्त है, अशोक कुमार शर्मा बनाम चन्द्रशेखर मामले में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों वाली पीठ ने इस सन्दर्भ में फेसला सुनाया कि:

"6.... यह प्रस्ताव कि जहां आवेदन दाखिल करने की अन्तिम तिथि के रूप में एक विशेष तिथि निर्धारित करने के लिए आवेदन मांगे जाते है, उम्मीदवारों की पात्रता को उस तिथि और अकेले उस तिथि के सन्दर्भ में आंका जाना चाहिए, एक अच्छी तरह से स्थापित है। जो व्यक्ति ऐसे निर्धारित तिथि के बाद निर्धारित योग्यता प्राप्त कर लेता है, उस पर बिल्कुल भी विचार नहीं किया जा सकता है। आवेदकों के लिए जारी या प्रकाशित किया गया कोई विज्ञापन या अधिसूचना जनता के लिए एक प्रतिनिधित्व है और इसे जारी करने वाला प्राधिकारी इस तरह के प्रतिनिधित्व से बंधा हुआ है। वह इसके विपरीत कार्य नहीं कर सकता।"

12. रिकॉर्ड से पता चलता है कि अनुकूलन करने की शक्ति का मतलब केवल यह है कि ऐसे कानून जिनमें कुछ संशोधन या अनुकूलन की आवश्यकता होती है, उन्हें परिभाषित अवधि यानी 2 साल के भीतर संशोधित या अनुकूलित किया जा सकता है। अनुकूलन और संशोधन की ऐसी किसी भी कवायद के अभाव में, उत्तर प्रदेश राज्य में

लागू सभी कानून, नियम, विनियम और वैधानिक आदेश बिना किसी बदलाव के उत्तराखण्ड राज्य पर लागू होते है।

13. मामले को देखते हुए, इस न्यायालय की राय है कि उत्तर प्रदेश विधानमंडल द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता में संशोधन करके दंड संहिता की धारा 506 के तहत अपराध को गैरजमानती और संज्ञेय बनाया जाना राज्य पर भी लागू है। उत्तराखण्ड अपनी क्षेत्रीय सीमाओं के भीतर याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का यह तर्क कि संहिता की धारा 506 के तहत अपराध उत्तराखण्ड राज्य में गैर संज्ञेय अपराध है, टिक नहीं पायेगा।

14. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने भी इस तथ्य का सहारा लेते हुए अनुपात को अलग करने की कोशिश की। उक्त कानून सेवा न्यायशास्त्र से सम्बन्धित है और आपराधिक मामलों पर लागू नहीं होता है। ऐसा तर्क ना केवल भ्रामक है, बल्कि अनुचित भी है। इस अर्थ में कि माननीय उच्च न्यायालय ने ''**सुमन देवी और अन्य बनाम उत्तराखण्ड राज्य और अन्य (2021) 6 एससीसी 163''** के मामले में नियमों, अधिनियमों, अधिनियमितियों और संशोधनों की प्रयोज्यता से सम्बन्धित सामान्य कानून प्रतिपादित किया गया है। उत्तर प्रदेश विधान सभा द्वारा उत्तराखण्ड राज्य का पुनर्गठन किया गया है। इसलिए चाहे वह आपराधिक मुकदमा हो या सेवा न्यायशास्त्र हो या न्यायनिर्णयन से सम्बन्धित मामला हो, उपरोक्त निर्णय में प्रतिपादित कानून अर्थात् **सुमन देवी और अन्य बनाम उत्तराखण्ड राज्य और अन्य (सुप्रा)** सभी मामलों पर लागू होता है।

15. अत में याचिकाकर्ता के लिए विद्वान अधिवक्ता **''मैसर्स निहारिका इन्फ्रास्ट्रक्चर प्रा0 लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य (सुप्रा)** का पैराग्राफ संख्याएं 15 और 16 पर भरोंसा किया है और तर्क दिया है कि भले ही एफ0 आई0 आर0 रद्द नहीं की गई है, लेकिन दोनों पहलुओं के बीच संतुलन बनाये रखना होगा और अदालत की याचिकाकर्ता को किसी प्रकार की सुविधा देनी चाहिए, ताकि वह जांच अधिकारी के सामने और उसके बाद भी पेश हो सके। अपने मामले की प्रस्तुति और याचिकाकर्ता और शिकायतकर्ता को सुनकर, जांच अधिकारी को याचिकाकर्ता को गिरफतार करने या नहीं करने का निर्णय लेना चाहिए। यह टिप्पणी हमें इसलिए भी स्वीकार्य नहीं है क्योंकि निहारिका के फैसले के मामले में याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने जिन अलग–अलग पै. राग्राफों पर भरोंसा किया है, वे इस तरह की कार्यवाही के विरूद्ध हैं।

16. बेहतर सराहना के उद्देश्य से, हम उपरोक्त मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस्तेमाल की गई सटीक भाषा पर ध्यान देते हैं, जिसमें उच्च न्यायालयों द्वारा बिना कोई कारण बताए स्थगन आदेश देने में कुछ निर्णयों में अपनाए गए पाठ्यक्रम

की आलोचना की गई है। मेसर्स निहारिका के फेसले के पैराग्राफ 15 और 16 नीचे उद्धृत किए गए हैः–

"15. जैसा कि ऊपर देखा गया है, ऐसे कुछ मामले हो सकते हैं जहां आपराधिक कार्यवाही शुरू करना कानून की प्रक्रिया का दुरूपयोग हो सकता है। ऐसे मामलों में, और केवल असाधारण मामलों में और जहां यह पाया जाता है कि गैर–हस्तक्षेप के परिमाणस्वरूप न्याय की हानि होगी, उच्च न्यायालय, धारा 482 सी.आर.पी.सी. और/या भारत के संविधान का अनुच्छेद 226, के तहत अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए। एफ. आई. आर. ध् शिकायत ध् आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर सकता है और आगे की जांच पर रोक भी लगा सकता है। हालांकि, उच्च न्यायालय को प्रारंभिक चरण में आपराधिक कार्यवाही में हस्तक्षेप करने में धीमा होना चाहिए, यानी एफ.आई.आर.धशिकायत दर्ज करने के तुरंत बाद दायर याचिका को रद्द करना और पुलिस को एफ. आई. आर. धशिकायत के आरोपों की जांच करने के लिए पर्याप्त समय नहीं देना चाहिए। जो दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के तहत पुलिस का वैधानिक अधिकार/कर्तव्य है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि धारा 482 सी.आर. पी. सी. के तहत शक्ति बहुत व्यापक है, लेकिन जैसा कि इस न्यायालय ने यहां ऊपर उल्लिखित निर्णयों की श्रृंखला में देखा है, व्यापक शक्ति प्रदान करने के लिए न्यायालय को अधिक सतर्क रहने की आवश्यकता होती है और यह न्यायालय पर एक कठिन और अधिक मेहनती कर्तव्य डालता है। इसलिए, असाधारण मामलों में, जब उच्च न्यायालय इसे उचित समझता है, तो रद्द करने के मापदंडों और कानून द्वारा लगाए गए आत्म–संयम को ध्यान में रखते हुए, उचित अंतरिम आदेश पारित कर सकता है, जैसे कि कानून में उचित हो, हालांकि, उच्च न्यायालय को ऐसा करना होगा संक्षिप्त कारण बताएं जो प्रासंगिक तथ्यों पर न्यायालय द्वारा दिमाग के प्रयोग को प्रतिबिंबित करेगा।

16. *हमने उच्च न्यायालयों द्वारा सी.आर. पी. सी की धारा 482 और/या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रद्द करने की कार्यवाही में गिरफ्तारी पर रोक औरध्या कोई कारण बताते हुए "आरोपी के विरूद्ध कोई कठोर कदम नहीं उठाए जाने" के अंतरिम आदेश पारित करते हुए कई आदेश देखे हैं। हमने उच्च न्यायालयों द्वारा सीआरपीसी की धारा 173 के तहत दर्ज जांच के दौरान या आरोप पत्र/अंतिम रिपोर्ट आने तक आरोपी को गिरफ्तार न करने की याचिकाओं को खारिज करते हुए पारित किए गए कई आदेशों को भी देखा है। जैसा कि ऊपर देखा गया है, संज्ञेय अपराध की जांच करना और जांच के दौरान साक्ष्य एकत्र करना पुलिस का वैधानिक अधिकार और कर्तव्य भी है। हिरासत में जांच की आवश्यकता हो सकती है जिसके लिए आरोपी को पुलिस हिरासत (जिसे लोकप्रिय रूप से रिमांड के रूप में जाना जाता है) में रहना*

आवश्यक है। इसलिए, बिना कारण बताए गिरफ्तारी न करने औरध्या ''कोई कठोर कदम न उठाने'' के इस तरह के व्यापक अंतरिम आदेश पारित करने से जांच में बाधा आएगी और सीआर. पी. सी. के प्रावधानों के तहत प्रदत्त संज्ञेय अपराध की जांच करने के पुलिस के वैधानिक अधिकारध्कर्तव्य पर असर पड़ सकता है। अतः ऐसा व्यापक आदेश बिल्कुल भी उचित नहीं है। उच्च न्यायालय के आदेश में उन कारणों का खुलासा होना चाहिए कि उसने सीआर, पी.सी. की धारा 482 के तहत कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान एक अंतरिम निर्देश क्यों पारित किया है। ऐसे कारण, चाहे कितने भी संक्षिप्त क्यों न हों, उनमें मस्तिष्क के प्रयोग का खुलासा अवश्य होना चाहिए

उपरोक्त बात पर दूसरे दृष्टिकोण से भी विचार करना आवश्यक है। इस तरह के व्यापक आदेश देने से न केवल जांच पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा, बल्कि कानून के शासन को बनाए रखने पर भी दूरगामी प्रभाव पड़ेगा। जहां जांच लंबे समय तक रुकी रहती है, भले ही रोक अंततः हटा दी जाती है, बाद की जांच इस साधारण कारण से बहुत उपयोगी नहीं हो सकती है कि सबूत अब उपलब्ध नहीं हो सकते हैं। इसलिए, यदि एफ. आई. आर.धशिकायत में नामित आरोपी को अपनी गिरफ्तारी की आशंका है, तो उसके पास सी.आर.पी.सी. की धारा 438 के तहत अग्रिम जमानत के लिए आवेदन करने का एक उपाय है। और धारा 438 सी.आर.पी.सी. के तहत अग्रिम जमानत देने की शर्तें पूरी होने पर, उसे सक्षम न्यायालय द्वारा अग्रिम जमानत पर रिहा किया जा सकता है। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि अभियुक्त सुधारहीन है। इस बात पर विवाद नहीं किया जा सकता कि सी0आर0पी0सी0 की धारा 438 के तहत अग्रिम जमानत दी जाती है। सी0आर0पी0सी0 की धारा 438 के तहत निर्धारित शर्तों पर दी जा सकती है। संतुष्ट है। वहीं, यह यान देने वाली बात है कि जब संज्ञेय अपरा की एफ0आई0आर0 दर्ज की जाती है तो गिरफ्तारी जरूरी नहीं होती है। फिर भी यदि किसी व्यक्ति को संज्ञेय अपराध का खुलासा करने वाली एफ0आई0आर0 के सम्बंध में अपनी गिरफ्तारी की आंशका है, जैसा कि ऊपर देखा गया है, तो उसके पास सी0आर0पी0सी0 की धारा 438 के तहत अग्रिम जमानत के लिए आवेदन करने का एक उपया है। जैसा कि इस न्यायालय ने **हेमा मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2014) 4 एससीसी 453** के मामले में देखा, हालांकि उच्च न्यायालयों के पास अनुच्छेद 226 के तहत बहुत व्यापक शक्तियां हैं, भारत के संविधान के अनच्छेद 226 के तहत शक्तियां है। न्याय के दुरूपयोग को रोकने और अधिकारियों द्वारा आरोपी व्यक्तियों की पूर्व–गिरफ्तारी के अंधाधुंध तरीके से कानून की प्रक्रिया के दुरूपयोग को रोकने के लिए प्रयोग किया गया। आगे यह देखा गया है कि अनुच्छुद 226 के तहत ऐसी याचिका पर विचार करते समय, उच्च न्यायालय को दो हितों को संतुलित करना चाहिए। एक ओर, न्यायालय को यह सुनिश्चित करना हे कि

कार्यवाही में अनुच्छेद 226 के तहत ऐसी शक्ति का उदारतापूर्वक प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए ताकि इसे सी0आर0पी0सी0 की धारा 438 में परिवर्तित किया जा सके। आगे यह देखा गया है कि दूसरी ओर, जब भी उच्च न्यायालय को पता चलता है कि किसी दिए गए मामले में यदि पूर्व–गिरफ्तारी के विरूद्ध सुरक्षा नहीं दी गयी है तो यह न्याय का घोर दुरूपयोग होगा और गिरफ्तारी के लिए कोई भी ममला लंबित नहीं है। मुकदमें में उच्च न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए अग्रिम जमानत की प्रकृति में राहत देने के लिए स्वंतंत्र होगा, यह ध्यान में रखते हुए कि इस शक्ति का प्रयोग उन मामलों में संयमित रूप से किया जाना चाहिए जहां यह बिल्कुल उचित और उचित नहीं है। हालांकि, गिरफ्तारी न करने या ''कोई बलपूर्वक कदम न उठाने'' का ऐसा व्यापक अंतरिम आदेश यंत्रवत् और नियमित तरीके से पारित नहीं किया जा सकता है।

17. इस प्रकार, इस न्यायालय की राय है कि जब यह निष्कर्ष निकलता है कि याचिकाकर्ता द्वारा अपने अधिवक्ता के माध्यम से उठाए गए तर्क स्वीकार्य नहीं हैं, तो याचिकाकर्ता की गिरफ्तारी पर रोक लगाने का किसी भी प्रकार का आदेश देना उचित नहीं होगा, जो कि है जांच एजेंसी का पूर्ण अधिकार क्षेत्र, बिना उचित सामग्री के इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कि एफ.आई.आर. को ही रद्द कर दिया जाना चाहिए। भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत आपराधिक रिट याचिका को खारिज करते समय न्यायालय को याचिकाकर्ता के पक्ष में सुरक्षा के लिए कोई आदेश पारित नहीं करना चाहिए।

18. इसलिए, यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि रिट याचिका में कोई योग्यता बल नहीं है, तदनुसार, इसे खारिज कर दिया गया है।

(संजय कुमार मिश्रा, जे.)

04.07.2022